नीलेश प्रकाशन

बी 5/62 अर्जुननगर ल्ली 1005

श्याम विद्यार्थी

कविता संकलन आत्मज शब्द

मूल्य 80 00

© श्याम विद्यार्थी

प्रथम संस्करण 1994

प्रकाशक नालेश प्रकाशन
जी-5/62, अर्जुन नगर दिल्ली-110051

लेजर टाइप सेटिंग माइक्रो बिट कम्प्यूटर्स,
डी-10, ईस्ट अर्जुन नगर, नजदीक कड़कड़डूमा कोर्टस,
शाहदरा दिल्ली-110032

मुद्रक सजीव आफसैट प्रिन्टर्स
एफ 8/3[illegible] कृष्ण नगर, दिल्ली-110051

कलापक्ष इन्दर [illegible]

परमाराध्य (स्व०) पिता श्री भीमशंकर औदीच्य
की पावन स्मृति को
सादर!

"यमुना वही, वही गोकुल है
किन्तु कदम्ब कहाँ?
किस शाखा पर बैठूँ गाऊँ
हर खग यही पूछता है?
एक तुम्हारे बिना पिताश्री
जीवन सूना सूना लगता है।"

'श्याम'

अपनी बात

सोच नहीं पा रहा हूँ कि अपनी बात कहाँ से शुरू करूँ ? कविताओं के [illegible] अपनी बात ही तो भरी हुई है। फिर अलग से क्या शेष ? कविता भी तो मेरा [illegible] है। वह मुझसे पृथक् कहाँ ? मेरी अभिव्यक्ति के धरातल पर वह 13 वर्ष की आयु में [illegible] गई थी। सर्वप्रथम वेदना राग ने उसे झंकृत किया था। उन्हीं दिनों की मेरा [illegible]

''वेदना राग को इस हृदय बीन पर
कल्पना सीखनी है बजाना अभी
सोते हुए दुधमुँहे भाव [illegible]
भावना सीखनी है जगाना अभी।''

मेरी कविता का राष्ट्रीय भावना से जुड़ाव किशोरावस्था में [illegible] देदीप्यमान भारत प्राय मनश्चक्षुओ के समक्ष साकार हो उठता था-

''विश्वाटवी के विशालकाय गह्वर में
महाबली भारत सिंह करता निवास था,
वीर ही नहीं अति धीर गम्भीर वह
प्रतिक्षण स्वसाधना मे रहता ध्यानस्थ था।''

वर्तमान के पटल पर उसे गहन निद्रा मे मग्न देखकर पीड़ा का भी अनुभव होता था

''हा जगदगुरू ज्ञानदाता क्यो अधिक हे सो रहा ?
क्यो अमा की कालिमा मे कान्ति अपनी खो रहा ?
जागरण का गीत अभिनव क्यो नही तू गा रहा ?
क्यो नही घनघोर निद्रा त्याग पाचजन्य बजा रहा ?''

काव्य चेतना का एक स्तर आत्मदर्शन का भी रहा है जो कि निम्न पंक्तियों में [illegible] हुआ हे—

मै शुद्ध बुद्ध चेतन अनन्त,
मैं अजर अमर, मै तेजवन्त
मेरी आभा से उद्भासित यह दिग् दिगन्त।

इस प्रकार मेरी सृजन चेतना विभिन्न मन स्थितियो और भाव दशाओ का [illegible] करती रही। यह क्रम सन 1970 तक चला। इसे मेरी कविता यात्रा का प्रथम [illegible]

सकता है। उसके बाद एक सुदीर्घ अन्तराल। मैंने लगभग 21 वर्ष तक कुछ नहीं लिखा। केवल कर्म की कविता को जीता रहा। क्यों नहीं लिखा ? अनेक कारण है। उनके उल्लेख का यह उपयुक्त अवसर नहीं है। सन् 1992 में मेरे सुषुप्त ज्वालामुख की गहन निद्रा टूटी और एक भाव-विस्फोट जैसा हुआ। मैंने अनुभव किया–

''कौन जाने, कब, कहाँ पर
टूट जाये नींद
उस ज्वालामुखी की
जो युगों से शान्त, अविचल, मौन है ?

मनुजता की प्राणातक पीर अनुभव कर
वह तिलमिलाता
भृकुटि तनती, भींच लेता मुट्ठियों को,
अधर नासापुट फड़कते
अगार ऑखो से बरसते
हुकारता वह बार-बार,
फूट पडता क्रोध मन का, दर्द उर का
भाव का होता प्रबल विस्फोट।''

उन्हीं क्षणों में शिव के विराट् व्यक्तित्व को सृजन सापेक्ष मानव जीवन के सन्दर्भ में रूपायित करते हुए मैंने एक लम्बी कविता लिखी–'रस अमृत वर्षण'। प्रारम्भिक पंक्तियां है -

''यह शकर की, प्रलयकर की
भैरव विराट्
सृजन तप भूमि यहाँ
प्रालेय हलाहल पीकर तुमको
रस अमृत वर्षण करना है।''

उसके बाद सिलसिला चल पड़ा। इस संग्रह की कविताएँ मेरी काव्य यात्रा के दूसरे चरण की कविताएँ है। जबसे मैंने काव्य यात्रा प्रारम्भ की, मेरी चेतना चराचर जगत में न जाने कहाँ-कहाँ विचरण करती रही है। इस यात्रा में उसे कहीं मलयानिल का शीतल सस्पर्श मिला तो कहीं तन दग्ध बयार का थपेड़ा, कहीं वह जल की एक एक बूँद के लिए तरसी तो कहीं सागर उसके पैर पखारने के लिए प्रस्तुत। मेरी चेतना सम्पूर्ण सृष्टि के प्रति कृतज्ञ है , उसकी प्रत्येक चितवन और भगिमा के प्रति। कविता के प्रति कवियों और समीक्षकों का अपना-अपना दृष्टिकोण रहा है। मैंने उसे किसी वाद या विचारधारा विशेष की कैद में रखना उचित नहीं समझा। वह वस्तुत सहज और स्वतत्र सत्ता की अधिकारिणी है। मेरे लिए तो वह स्वच्छन्द, उन्मुक्त गगनविहारिणि विहगिनि की तरह रही है। उससे अपने फड़फड़ाते हुए परवो से कभी

दूर नभ का कोई कोना छुआ कभी किसी डाल पर बैठकर पचम स्वर मे गाया तो कभी तपती धरती पर विचरण करते हुए अपने सुकोमल परवो को झुलसाया। वह कही भी रही, विशुद्ध अनुभूति उसका पाथेय रहा।

एक बात और। मेरे लिए कविता शौक नहीं है, शब्द की साधना है, आराधना है। वह जीवन के लिए आवश्यकता है, शक्ति है। कविता की उपेक्षा जीवन की उपेक्षा है। आज युग की मुमूर्षु जन चेतना को कविता ही अपनी सजीवनी शक्ति के द्वारा जीवन्त कर सकती है। विकट विसगतियों, विद्रूपताओ और विकृतियो के रूप मे युग की व्याधियो के शमन हेतु कविता महौषधि सिद्ध हो सकती है, बशर्ते वह अपने दायित्व बोध के प्रति सजग और अस्मिता की सुरक्षा के प्रति सचेष्ट हो। युगीन परिवेश मे आज मानव चेतना जिस तरह मर्माहत है, मानवात्मा जिस प्रकार नितान्त असुरक्षित है और मानवत्व पर दानवत्व जिस तरह हावी है मानव समाज की रक्षा के लिए कविता ही वह अमोघ अस्त्र है जो इन निषेधात्मक एव विध्वसक स्थितियो से परित्राण दिला सकता है। इस युग के वृत्रासुर को विध्वस्त करने के लिए कवि-दधीचि की तप पूत अस्थियो से निर्मित कविता-वज्रास्त्र की आवश्यकता है, पर वह सच्ची कविता होनी चाहिए।

मेरी कविताएँ वैसे तो समय-समय पर विभिन्न पत्र-पत्रिकाओ मे प्रकाशित होती रही है, परन्तु सग्रह रूप मे उनके प्रकाशन के प्रति मेरी उदासीनता रही। इसे मात्र सयोग ही कहा जा सकता है कि एक लम्बे अरसे के बाद अहमदाबाद प्रवास के दौरान सुपरिचित कवि-कथाकार एव सुहृद्वर डॉ० शैलेश पडित से मेरा मिलना हुआ। वह मुझसे कविता सग्रह प्रकाशन के लिए स्नेहाधिकारपूर्वक निरन्तर आग्रह करते रहे और उसी का परिणाम है यह कविता सग्रह जो आपके समक्ष है। इसका बहुत बडा श्रेय मै उनके स्नेहाग्रह को देता हूँ। मुझे विश्वास है कि मेरे अन्य मित्रगण भी जो कि समय-समय पर मुझ पर सग्रह प्रकाशन हेतु दबाव डालते रहे है, इस कविता सग्रह को देखकर प्रसन्न होगे। प्रकाशक बन्धु श्री इन्द्रेश राजपूत ने प्रकाशनार्थ जिस तत्परता और दायित्वानुभूति का परिचय दिया है, उसके लिए मै उनका अत्यन्त आभारी हूँ।

शुभमस्तु!

— श्याम विद्यार्थी

कविता क्रम

आत्मज शब्द

मेरे स्नेह परिपोषित तपःपूत
आत्मज प्रिय शब्द!
तुम्हारे महाभिनिष्क्रमण के
निर्णायक क्षण मे
मैं तुम्हें क्या सीख दूँ?
जो कुछ दे सकता था
अपने व्यक्तित्व से
कृतित्व से,
चेतना के चिरसंचित कोष से,
प्राणवन्त स्नेहिल संस्पर्श से
सब कुछ तो दे दिया तुमको।
तुम्हारे ऊर्जस्वित, लावण्यमय
देदीप्यमान मुखमंडल से,
तेजतप्त सुघड़ देहयष्टि से,
मानस महासिन्धु की
अथाह जलराशि से,
स्वप्न सौन्दर्य की,
सत्य संकल्प की छिटकती
एक-एक बूँद मे
मेरा उत्तप्त रक्त ही तो छलकता है।
मन नहीं करता
तुम्हारी अतुल्य शक्ति पर
धौत धवल चरित्र पर
संदेह करूँ
क्योंकि ऐसा करना
स्वयं को ही कटघरे मे
खड़ा करना है।
मै जानता हूँ
तुम्हारा स्वभाव है

मिता न शत्रु निश्छल
बाह्य आभ्यंतर स्वरूप में
अभेद, एक
प्राणप्रिय विश्वासों
आस्थाओं से प्रतिबद्ध।
किन्तु जिस पथ पर तुमको बढ़ना है
अविराम दिन रात चलना है,
उस पर मिलेंगे तुम्हें
पग-पग पर गति अवरोधक
गड्ढे, कंकड़, काँच, कंटक, पत्थर,
तनी हुई मुट्ठियाँ
लाल-पीली आँखें
चीखती, भौंकती, गुर्राती
फुफकारती आवाजें,
तुम्हारे समूल उच्छेदन को कृत संकल्प
क्रूर, कुटिल, हिंस्र
षड्यन्त्री शक्तियाँ,
हीनता ग्रन्थि पीड़ित वे
ईर्ष्या कुंठा की आग में जलती
खीझ में भरी खम्भे नोचती
नहीं होगी अभिभूत
तुम्हारे अप्रतिम अनिंद्य सौन्दर्य से,
वे चाहेंगी
तुम छोड़ जाओ मैदान
अपना प्रगति अभियान
ले लो शरण किसी अंधी गुफा में
करो वहाँ निपट अंधकार का आलिंगन,
फिर वे खुल कर खेलें खेल
मनायें विजयोत्सव,
फैलायें चारों ओर
अनाचार, अत्याचार, उन्माद।
ऐसे में
तुम्हारा दायित्व हो जायेगा दोहरा,
एक ओर
अपनी अस्मिता की रक्षा

उसका विकास
दूसरी ओर
षड़यन्त्री शक्तियों के
दुष्चक्रों का पर्दाफाश।
मेरी आस्थाओं, मान्यताओं के
प्रकाश पुञ्ज
अखण्ड विश्वास के
अद्वितीय सूर्य!
मेरे शिवसंकल्पित शब्द!
तम की साजिशें
कितनी ही गहरी हों
कोना-कोना नभ का
काली-काली घटाओं से घिर जाए
फिर भी तुम डिगना नहीं
पीछे तुम मुड़ना नहीं
अपने अभीष्ट, स्वनिर्धारित मार्ग से।
मेरे रक्त की सौगन्ध तुम्हें
मत रखना तुम हृदय दौर्बल्य
मत होना शोक संविग्न
क्लीव, युद्ध उपरत।
कर्तव्य की बलिवेदी पर
यदि छोड़नी पड़े तुम्हे
यह देह भी
तो छोड़ देना सहजता, प्रसन्नता से,
कर लेना वरण अमरत्व
होकर विलीन पंचतत्व में।
कैसी भी घातें, प्रतिघातें हों
रखना बस एक ही सीख ध्यान,
मेरे स्नेह परिपोषित तप-पूत
आत्मज प्रिय शब्द।
तुम पलायन के सेतु मत बनना।

कविता का वास

घनघोर बियाबान जंगल,
चारो ओर घुप्प अँधेरा,
दिन रात मूसलाधार बरसात,
दूर-दूर तक नहीं दीखती
आदम की जात,
पग-पग पर रेंगते
विकराल बिच्छू साँप,
ठौर-ठौर गरजते
हिंस्र जीव जन्तु,
ऐसे मे भी वहाँ
हँसती खिलखिलाती
खेलती कूदती
नाचती गाती
कविता का वास
कौन करेगा विश्वास?
जिसे हम
'कनक छरी सी कामिनी'
या अपने अस्तित्व को झुठलाती
छुईमुई समझते रहे हैं
वह कैसे जी सकती है
इस भयावह विषाक्त वातावरण मे?
सच पूछो तो
इस दमघोंटू
सड़ाँध भरे माहौल मे
यदि वह घुट-घुट कर
सिसक-सिसक कर
मर भी जाती
तो कौन करता अविश्वास?

कौन करता सन्देह
हत्या या आत्महत्या का?
अपितु मानी जाती
वह उसकी
सहज परिवेशजन्य मृत्यु,
लेकिन उसकी
अप्रतिहत, अपराजेय जिजीविषा ने
उसे कहाँ मरने दिया?
बल्कि वह तो
अपने अस्तित्व के प्रति
व्यक्त किये गए
सारे संशयों, प्रश्नचिन्हों और आशंकाओं को
निर्मूल सिद्ध करके
चिर परिचित मुस्कान के साथ
अजर अमर शक्ति के रुप में
उपस्थित है।
अपनी उपस्थिति का परिचय
वह देती है
कभी पिक कूजन से
कभी सिंहनाद से
फिर भी जिज्ञासा होती है
आखिर वहाँ कौन करता है
उसकी परवरिश
कौन देता है उसे
समय से भोजन नाश्ता?
कौन रखता है सुरक्षित
उसकी अमोघ उर्जा, प्राणवायु?
बीमार पड़ने पर कौन करता है
उसकी तीमारदारी?
उसके चतुर्दिक विकास के लिए
कौन करवाता है परिचय?
ज्ञान विज्ञान, दर्शन
कला, संस्कृति, इतिहास से?
लगता है तथाकथित सभ्यता की

भागों दौड़ में
हम भूल गए
सम्बन्धों का निहितार्थ
शब्द तो याद रखे
भूल गए अर्थ
क्यों भूल गए?
क्यों भूल गए हम
कविता की भी तो कोई माँ होगी ?
कविता की माँ है प्रकृति
अनन्त रूपा प्रकृति
विराट् रूपा प्रकृति
कुसुमादपि कोमल प्रकृति
वज्रादपि कठोर प्रकृति
जो हर हालत में
उसका पालन पोषण करती है,
जीना सिखाती है
और जीवन समर में जूझने के लिए
उसे तैयार करती है।
उसने अपनी बेटी को
कोमलांगी बनाया
तो कठोर हृदया भी,
यही वजह है
जबर्दस्त प्रतिकूलताओं
और प्रतिरोधों के बीच भी
प्रसन्नवदना कविता
अपना वर्चस्व
सदैव सिद्ध करती है।

भीड़ का एक हिस्सा

आखिर इतनी देर से
तुम वहाँ
अकेले क्यों खड़े हो ?
एकान्तवास की यातना
क्यों झेल रहे हो ?
क्यों नहीं बढ़ाते कदम
सामूहिक गंतव्य की ओर?
देखो न!
भीड़ तो वहाँ है
सब उधर ही आ रहे हैं बेरोकटोक
बिना किसी दुविधा, सशय, अनिश्चय के।

माफ करो मेरे दोस्त
मुझे नहीं बनना है
तुम्हारी या उनकी
भीड़ का एक हिस्सा।
मैं जानता हूँ
तुम अपनी आदत के मुताबिक
मुझे समझाओगे
भीड़ का दर्शन
उसका मनोविज्ञान
नीतिशास्त्र और सौन्दर्यशास्त्र,
तुम गिनाओगे
उसके अनेकानेक
विजय अभियान, कीर्तिमान।
उसकी महत्ता निरूपित करते हुए
तुम बताओगे
भीड़ सन्नाटा तोड़ती है,

'एकोऽहं बहुस्याम' [illegible] अर्थ को
चरितार्थ करती है
सघन देह बोध को
बहुविध रूपायित करती है,
'संगच्छध्वं संवदध्वं' की आकांक्षा को
पल्लव सिखाती है,
गतानुगतिक लोकधर्म
परिपुष्ट करती है।
मैं यह भी जानता हूँ
जब तुम्हें विश्वास हो जायेगा
मैं तुम्हारी बात नहीं मानूँगा
तुम मुझे कहोगे
असामाजिक, पलायनवादी
आत्मरतिलीन अहंकारी।
लेकिन फिर भी
मुझे तुमसे
कोई शिकायत नहीं होगी।
क्योंकि मैं जानता हूँ
तुम वही कहोगे
वही करोगे
जिसके लिए तुम्हारी प्रतिबद्धता
तुम्हें विवश करती है,
नफा नुकसान का अंकगणित
सीखने के लिए
अभिप्रेरित करती है।
वहाँ कोई प्रश्न या चिन्ता नहीं है
स्वविवेक, आत्मनिर्णय
या निजत्व सुरक्षा की।
तुम्हारी सदाशयता के प्रति
पूर्ण कृतज्ञता व्यक्त करते हुए
मैं तुम्हें बताना चाहूँगा
मेरा भीड़ से अलगाव
आकस्मिक नहीं है,
भावुकता की उपज भी नहीं है,

बिना सोचे समझे लिया गया
निर्णय नहीं है,
स्वार्थ की भित्ति पर
उकेरा हुआ चित्र नहीं है,
वह सौ फीसदी
निजानुभव से पैदा हुआ सकल्प है।
भीड की महिमा से प्रभावित होकर
जब-जब मैने
उससे जुडने का उपक्रम किया,
मुझे लगा मेरा आत्म
कहीं खो गया, भटक गया,
मेरा अस्तित्व
राहु केतु मे विभक्त हो गया,
मुझे लगा मैं निर्ममतापूर्वक
काट दिया गया हूँ स्वय से।

दूसरी पीड़ा
जुड़ भी तो नहीं पाया किसी से।
क्या यही उपलब्धि है भीड़ की
जिसका कीर्तिगान करते तुम नहीं थकते?
मै पूछता हूँ तुमसे
जिस भीड़ से जुड़ने के लिए
तुम बेताब बेचैन रहते हो
क्या वह भी तुमसे जुड़ती है?
तुम्हें पहचानती है?
तुम्हें याद करती है?
या अपने मुखमंडल की
शोभा बढ़ाने के पश्चात्
तुम्हे छोड़ देती है लावारिस
अज्ञात पथ पर।
अब तुम समझ गए होगे
मैं क्यो नहीं बनना चाहता
इस अनाम भीड का हिस्सा
जिसका पेट कितना भी भरा हो

फिर भी वह रहती है भूखी की भूखी
लपलपाती रहती है जीभ उसकी
चाटने को सदैव
अधिकाधिक नरमुंडों को।
क्या तुम चाहते हो
मैं भी उसके मुँह का
एक कौर बनूँ
अपने अस्तित्व को नकारूँ!
नहीं-नहीं, यह नहीं हो सकता
अपने बहुमूल्य
विशिष्ट अद्वैत के प्रति
मैं अन्याय, अत्याचार
नहीं कर सकता
लोकप्रियता, लोकानुरंजन के नाम पर
मैं नहीं बन सकता
सर्वग्रासी भीड़ का एक हिस्सा।

बलात्य बिल्ली

अहंकार का दूध पिला-पिला कर
मन के घर आँगन में
हम पालते है
एक स्थूलकाय चितकबरी बिल्ली
जो घूमती रहती है अपने परिवेश मे
दबे पॉव, चुपचाप
धुन मे मस्त।
शिकार की खोज मे दत्तचित्त वह
छानती फिरती है
घर का कोना-कोना,
यही उसकी दिनचर्या, साधना
जीवन लक्ष्य की पहचान है।
घूमते-घूमते
जैसे ही उसके कान मे पड़ती है
चुहिया की आवाज़,
वह हो जाती सतर्क, सावधान
जमा लेती वीरासन
पैने-पैने पजों से छोड़ने के लिए
ध्वनि बेधी बाण।
अधेरे में चमचमाती उसकी ऑखो मे
आ जाती है और भी चमक
समाविष्ट हो जाती है
उसमे धनुर्धर अर्जुन की दृष्टि,
दिखाई देती है उसे
केवल चुहिया की देह।
चुहिया भी क्या करे
कहाँ जाये, कहाँ रहे

वह सोचती है
क्या इस घर का आँगन
उसका नहीं है?
अपनी जन्म भू पर
खेलने, कूदने, विचरने का
उसे अधिकार नहीं है?
वह भी तो जीती है
सह अस्तित्व की भावना से,
वह भी तो बुझाती है
होंठ की प्यास
पेट की आग
लेकिन हिंसक बनकर तो नहीं।
क्या इतने विशाल परिवेश मे
उसके अस्तित्व के लिए
कोई स्थान नहीं?
उसके जीवनाधिकार की सुरक्षा का
कोई प्रश्न नहीं?
आखिर वह कब तक रहे
दुबक कर अंधेरे बन्द कोनो मे?
वह भी समझती है
जीवन की नियति
क्षणभंगुरता का दर्शन
कायर जीवन की निस्सारता।
यही सोच समझकर
साहस बटोर कर
विद्रोही मन से
जैसे ही चुहिया बढ़ाती है दो कदम
बलान्ध बिल्ली
सम्पूर्ण शक्ति से मारती है झपट्टा
दबा लेती है मुँह मे
कोमल स्वप्नो, आकाँक्षाओ
अपेक्षाओ और कल्पनाओ के
ताने बाने से बुनी हुई

कागज़ के फूल

कागज़ के फूलों के तीखे नाक नक्श
रूप सौन्दर्य पर मुग्ध,
विस्मय विमूढ़, चिन्तामग्न
बगीचे के फूल,
बूढ़े माली से कहते हैं
तुम क्यों इतनी मेहनत करते हो?
क्यों मिट्टी, बीज, खाद, पानी जुटाकर
रात दिन रखवाली करके
हमें पैदा करते
पालते पोसते हो?
क्या तुम देखते नहीं
आजकल बाज़ार में
हू-ब-हू हमारे जैसे
कागज़ के फूल
धड़ल्ले से बिकते हैं,
लोग उन्हें खुशी-खुशी खरीदते हैं,
हमारी जगह उन्हें देकर
अपना अतिथि कक्ष सजाते हैं,
पीढ़ी दर पीढ़ी चलते आए रिश्ते को
ताक पर रखकर
बगैर किसी संकोच के
हमारी विरासत
उन्हें सौंप देते हैं।

माली कहता है
तुम निश्चिन्त रहो
तुम्हारा अस्तित्व निसर्गसिद्ध है,
जिस वृक्ष पर तुम प्रस्फुटित हुए हो

वही तुम्हारा अप्रतिम सिंहासन है।
पौधे की कोमल बाँहों पर बैठकर
तुम हँसो, गाओ, बतियाओ
पवन जब आये, इठलाओ
उससे मनचाही कर खूब बातें।
याद रखो,
ये इतराते कागज़ के फूल
कितना ही तुम्हारा अनुकरण कर लें
पर वे कभी भी तुम्हारा विकल्प नहीं बन सकते।
वे पाल सकते हैं भ्रम
तुम्हारी जैसी देह पाने का
परन्तु कहाँ से ला सकते हैं
क्षिति, जल, पावक, गगन, समीर का
सहज, पावन, प्राणवन्त संस्पर्श?
वे केवल पैदा कर सकते हैं
चतुर्दिक दृष्टि भ्रम,
पर नहीं फैला सकते
प्राण परिवेश में दिव्य गन्ध,
वे नहीं बुला सकते दूर देश से
किसी विरहानलविदग्ध मलयानिल को,
वे नहीं कर सकते बेसुध
यमुना के तट पर
राधा की याद में निमग्न किसी कृष्ण को।
ओ प्रकृति पुत्र पुष्प!
तुम अपनी तुलना क्यों करते हो
प्राण पुलक स्पर्श विहीन
जड़ता के प्रतीक
उन निर्गन्ध देहधारी
कागज़ के फूलों से।
देखो,
वे कुछ बोलते भी तो नहीं!
एक तुम हो
जो रेशे रेशे से बोलते हो
ऋतुओं की भाषा,

प्रतिध्वनित करते हो
चिड़ियों का कलरव,
मधुपों का गुंजन,
जीवन परिभाषा।
तुम्हारे आवाहन पर ही तो
कोई राम वाटिका में जाता है
वहाँ 'गिरा अनयन नयन बिनु बानी' हो जाता है,
तुम्हीं को तो कोई अलग प्रत्यंचा पर बिठाकर
दिशि दिशि में भेजता है,
तुम्हीं तो प्रिय के स्वागत की बेला में
पंखुड़ी बन बिखरते हो
तुम्हीं तो स्वर्गीय आत्मा की
पावन स्मृति में
प्रणत भाव श्रद्धांजलि बनते हो।

तुम तो देखते हो । । ।
उसका रुपहला, रजत लावण्य,
होकर प्रहर्षित, अभिभूत
उसके शिखरस्थ सौन्दर्य से
तुम गाने लगते हो गीत
करने लगते हो स्तवन, अभिनन्दन।
यह कैसी विडम्बना?
तुम बाँधने लगते हो
शब्द निर्झर को शब्द रज्जु से,
पूर्णमदः को पूर्णमिद से।
शब्द निर्झर का स्वरूप
उतना ही तो नहीं है
जितना वह दीखता है बाहर से।
बाहर तो केवल झिलमिलाहट है,
चमक दमक, चकाचौंध है,
अन्दर प्रकाश का अगाध पारावार है।
निर्झर तो परिणति है
किसी अदृश्य स्रोत से निकली
क्षीणकाय, अदम्य जलधारा की,
जो निष्करुण चट्टानों की
जाँघों के नीचे से गुजरती है,
जो झेलती है चुपचाप
उनका सारा दबाव, उत्पीड़न।
जो अन्दर ही अन्दर छटपटाती है
तिलमिलाती है
और करती रहती है अघोषित विद्रोह
जड़ता, निर्ममता के प्रति,
जो बजाती रहती है
क्रान्ति बिगुल
यथास्थिति को
धराध्वस्त करने हित।

एक खास आहट

मौन दरवाज़े पर
हवा के झोको का
रह रह कर
गुनगुनाना.
भूखी प्यासी व्याकुल गाय का
मुँह पटकना,
शिकार की खोज मे व्यस्त
गुर्राती बिल्ली का
पजे मारना,
पास मे खेलते हुए
बच्चो की
गेद का टकराना,
दर-दर भटकते
हठी भिखारी के
कटोरे का
दस्तक देना,
इन तमाम आवाज़ों में
मन क्यो सुनता है?
एक ही आहट
एक खास आहट
बाहर जिसका
अस्तित्व न होने पर भी
जो गूँजती है
मनोजगत मे बार-बार।
एक ओर वे आवाजे है
जो भटकती है पगली सी
दरवाज़े के बाहर
मन जिन्हे नहीं स्वीकारता,

और अनिच्छा जताते हुए
बन्द कर लेता है ओरस कान।
दूसरी ओर
वह एक खास आहट है
जो घेर लेती है
मन का सारा आकाश
चेतना का सम्पूर्ण संसार,
जो निराकार होते हुए भी
जब चाहती हो जाती साकार।
जिसके अदृश्य नूपुरों की रुनझुन
पायल की छमछम
बजती है मन मे
अनाहद नाद सी,
जो पैरो से चलती नहीं
फिर भी
पहुँच जाती
अपने गन्तव्य तक,
जो मुँह से बोलती नहीं
फिर भी
सब कुछ कह जाती
प्रकट कर जाती
अपना मन्तव्य।
जो बंधन को नहीं मानती
फिर भी
बाँध देती मन को
चारों खूंटों से।
कैसे वह हो जाती एकाकार
छोड़ देती परायी देह
बन जाती
अपने ही अन्तस की आहट
एक खास आहट?
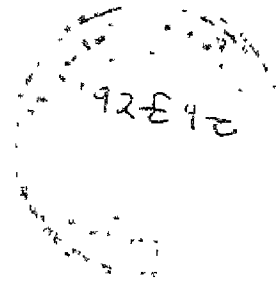
सम्बन्ध-कल्पवृक्ष

निजोन्नति-निदर्शन
स्वकेन्द्रित, स्वच्छन्दचारी
युक्लिप्टस मन
कब देता महत्व
सम्बन्ध-कल्पवृक्ष के,

अजरत्व अमरत्व को?
कब देता सश्रद्ध सम्मान
निर्मल निश्छल शब्द को?
सम्बन्ध-कल्पवृक्ष,

जो सतत सहज स्नेह जल से
अभिसिंचित रहता,
जो त्याग की आग मे तपकर
कुंदन सा निखरता,
जो प्रभंजन के सम्मुख भी
निष्कंप दीपवत् जलता,
जो निज गोद मे
भूत, वर्तमान, भविष्य को
एक साथ खिलाता,
प्रलम्ब बाहु
उन्नत प्रशस्त भाल
वह सम्बन्ध
अब इस पृथ्वी पर
पद निक्षेप क्यो नहीं करता?
दिव्य गन्धवाह
मलयानिल सपृक्त
वह सम्बन्ध
अब इस जगती मे

सुगन्धि क्यों नहीं फैलाता?
अमित ओज, तेज
शक्तिपुञ्ज भास्कर
वह सम्बन्ध
अब मनवासी तम के निशाचर को
क्यों नहीं भगाता ?
माधुर्य रस ओतप्रोत
सुकंठ स्वर सम्राट पिक
वह सम्बन्ध
अब जीवन तरु डाल पर बैठ
पंचम स्वर में क्यों नहीं गाता ?
लगता है,
जड़ीभूत जग से
तिरस्कृत उपेक्षित वह
चुपचाप अन्य लोक को चला गया,
लगता है,
छली, कुटिल, हिंस्र
युग दस्यु से लुटकर वह
अस्मिता सहेजता
निर्धन की कुटिया में छिप गया,
लगता है,
दया, शील, करुणा
पर दुःखकातरता से वंचित वह
दूर किसी निर्जन प्रदेश में
शैलखण्ड बनकर सो गया,
लगता है,
सागर की लहरों से
कल तक अभिषिक्त वह
अब जलते मरुस्थल में
रेत बन बिखर गया।
अतीत के समीपस्थ
ऐ आत्मीय मन बता
शब्द,
जो उद्भावक, स्वयप्रकाश

सच्चिदानन्द ब्रह्म प्रतिरूप कहा जाता है,
साधक जिसकी साधना मे
जीवन समर्पित कर देता है,
जो किसी पाषाण हृदयी को
आदि कवि बना देता है,
जो किसी देहासक्त चित्त को
भगवद्भक्त बना देता है,
जो किसी अज्ञ को बहुज्ञ बनाकर
वाग्विशेष भूषित कर देता है,
जो किसी उपेक्षित बालक को,
दुर्लभ परम पद सुलभ करा देता है,
वह अप्रतिम बलशाली
विपुल सामर्थ्यवान शब्द
कैसे किसी राक्षस मन के हाथो का
खिलौना बन जाता है?
जिसके साथ
वह जैसे चाहता खेलता
जिसे वह इच्छानुसार उछालता
घुमाता फिराता
और जब चाहता
जमीन पर पटक देता, फेक देता,
करके उसे चकनाचूर
वह शक्तिगर्वित मदान्ध मन
क्रूर अट्टहास करता।
अभिनय कला मे पारगत
वह मायावी मन
राम बनकर
रावण को धिक्कारता,
रावण के वेश मे
राम को खरी खोटी सुनाता,
कभी वह
रसिक राम
[illegible]
कभी वह

मस्तक का
अबोध दूबों में [illegible] जाता।
ऐ बाजीगर, जादू मत चला!
क्यों सरेआम तू
लोगों की आँखों में धूल झोंकता?
सम्बन्धों के मुखौटे लगाकर
क्यों तू भोले जन को ठगता?
कला कौशल के नाम पर
क्यों तू आस्था, विश्वास
सद्भाव को छलता?
याद रख,
स्वार्थ, झूठ, आडम्बर के हाथों से बना
मोम का महल
सत्याग्नि परीक्षा में
टिक नहीं पाता,
देखते ही देखते वह
पिघल कर अनंत में
विलीन हो जाता।
श्रेयस्कर है
वह लघुकाय
आत्मबलिदानी बीज
जो एक दिन वृक्ष में रूपान्तरित होकर
पल्लवित, पुष्पित, फलित होता
वह वृक्ष फिर सम्बन्ध का हो या शब्द का।

गुरु-शिष्य

समय!
तुम मेरे गुरु हो
इसलिए तुम्हारी उपेक्षा,
तुम्हारा अपमान
मुझे बरदाश्त नहीं होता।
बगैर विश्राम के
दिन रात दौड़ने पर भी,
ककड़, कॉच, कॉटे लगने से
लहूलुहान हो जाने पर भी,
कभी कोई
तुम्हारी पीठ भी तो नहीं ठोकता।
ऊपर से लोग यही कहते है
समय बड़ा बुरा है,
समय बड़ा नाजुक है,
समय बड़ा क्रूर है,
और तो और
तुम्हारे विशुद्ध नाम काल को
संसार ने अशुद्ध करके
मौत का पर्यायवाची बना दिया।
और यह विचित्र बात है
गुरु का अपमान करके
उसके पीछे-पीछे
दौड़ने वाले शिष्य को
संसार कदम कदम पर
शाबाशी देने को
तैयार रहता है।

मोहर की सुरक्षा

सही होने पर भी
मोहर छिप जाने से
जंग लगे सिक्के को
दुकानदार नहीं लेता,
चमक होने पर भी
मोहर मिट जाने से
घिसे हुए सिक्के को
दुकानदार नहीं लेता।
तुम्हें अगर कुछ खरीदना है
तो ध्यान रखने की बात है
कहीं आलस्य के कारण
साफ न करने से
सिक्के पर जंग न लग जाये,
और कहीं अधिक जोश के कारण
ज्यादा घिस देने से
मोहर ही न मिट जाये।

तीन बच्चे

मेरे तीन बच्चे —
सबसे बड़ा
बचपन!
भोला-भाला
नटखट
कौतूहलप्रिय
खेलने कूदने का आदी,
उससे छोटा
यौवन!
उत्साही, जोशीला
कुछ कर गुजरने वाला
जीवन उपभोग का आदी,
और सबसे छोटा
बुढ़ापा!
थका हारा
जपता सुमिरनी
सदा सोचने का आदी।
तीनो की
अपनी-अपनी खूबियाँ
अच्छाइयाँ, बुराइयाँ
अलग-अलग
रास्ते, मंजिले।
वे कभी
आपस मे लड़ते झगड़ते
कभी प्यार से
एक दूसरे को पुचकारते
कभी कभी
तीनो ही

… दुलार भी
मुझसे शिकायत करते,
मैं उन्हें समझाता
आपस में लड़ा झगड़ा मत करो
प्यार से रहा करो।
मेरे लिए तो
तीनों ही बच्चे बराबर हैं,
समान रूप से
प्यार, डाँट के हकदार हैं।
उनमें से कोई
अच्छा काम करता है
शाबाशी देता हूँ
अगर कोई
गलत काम करता है
कान उमेठता हूँ।

आत्म-विस्तार

मैं जब जड़ वस्तु को
स्वयं जड़ होकर देखता हूँ
वह मुझे
मूक, निश्चेतन और निष्क्रिय प्रतीत होती है।
उसी जड़ वस्तु को
जब मैं चेतन दृष्टि से देखता हूँ
वह मुझे
मुखर, सचेतन और सक्रिय दिखाई देती है।
जब एक गहन वन मे
कालिमा की चादर ओढे
निशा की गोद में बैठा मै रोता हूँ
और रोते-रोते सो जाता हूँ
तो प्रातः जगने पर
पत्ती-पत्ती पर
बूँदे ही बूँदे देखता हूँ।
सोचता हूँ
इन वृक्षों ने
जिन्हे निष्प्राण, निर्जीव कहा जाता है,
मेरे साथ रात भर रोते हुए
पत्तियो की देह पर
आँसू बिखेरे हैं।
मैं जब उपवन मे
फूलों से मिलने जाता हूँ,
देखकर उनकी मद मुस्कान भरा रूप
मुझे अपना बचपन
बेहद याद आता है,
कुछ समय बाद
शरम झिझक दूर होने पर

सूरज की किरणो से
बाते करते-करते
एक खिलखिलाता हुआ फूल
मेरे पास आता है,
आते ही चुपके से
यौवन का मदमाता स्वप्न
आँखो के सामने ला देता है,
और साँझ होते ही न जाने क्यो
उसका मुख मलिन हो जाता है,
वह मुरझाया हुआ फूल
रुँधे हुए कठ से
निराशा भरी वाणी मे कहता है—
आज से तुम
मेरे बचपन और यौवन के दृश्यो को
भूल जाओ,
क्यो?
क्योकि मै बूढ़ा हो गया हूँ।
धीरे-धीरे एक दिन ऐसा भी आता है,
जब हँसता खिलखिलाता इठलाता वह फूल,
मिट्टी पानी के प्यार से पला वह फूल,
झूम-झूम कर नाचता गाता वह फूल,
प्रेमी से रस भरी वाणी मे बतियाता वह फूल,
जीवन अनुभव को
अपनी पखुड़ियो मे समेटे वह फूल,
इन आँखो के सामने से
सदा-सदा के लिए उठ जाता है
और न जाने किस अज्ञात की गोद मे
वह थका माँदा सो जाता है।
यह दृश्य देखने के बाद
जब मैं घर आया
दर्पण मे मुख देखा
तो चेहरे पर झुर्रियाँ
गालो मे घाटियाँ
आँखो मे गड्ढे दिखाई देने लगे,

सिर के बाल
जो काले-काले भौरो से स्पर्धा करते थे
आज चाँदनी मे धुले हुए
रेशम के महीन धागो से दिखाई देते है।
थोड़ी ही देर मे क्या हुआ
सफेद चादर मे लिपटा मै
चार कधो पर लेटा हुआ
राम-राम सत्य है
सुनता हुआ
निश्चिन्त इस ससार से
अज्ञात लोक को चला गया।
जब मेरी चेतना शक्ति
आत्म विस्तार प्राप्त करती है
तो रात मे, एकान्त मे
गगन मे खिले हुए तारो से
मेरी बाते शुरु हो जाती है,
मेरी बतकही सुनने के बाद
वे चमचमाते तारे मुझसे कहते है —
ओ पृथ्वीवासी मानव!
देखो हमे
घोर अंधकार के बीच मे रहते हुए भी
हम कितने आत्म विश्वास से जगमगाते है,
और तम का वक्षस्थल चीर कर
चन्दा की बॉह छोड़
तुमसे बाते करते आते हैं,
इसी तरह तुम भी
अपने अधकारग्रस्त जीवन के पथ को
आत्मा की आभा से करके आलोकित
अविराम चलते रहो! चलते रहो।

विस्फोट

कौन जाने
कब कहाँ पर
टूट जाए नींद
उस ज्वालामुखी की
जो युगो से
शांत, अविचल, मौन है।
जो नहीं है जानता
पल पल बिलखना, छटपटाना
बड़बड़ाना या गरजना,
जगत दर्शन जनित पीड़ा वेदना को
अश्रु छदो मे
सदा अभिव्यक्त करना।
प्रकृति कितने ही करे
निर्मम प्रहार,
वह मचाये
नित नये उत्पात,
क्रूरता की, कुटिलता की
जम करे
रात दिन बरसात,
सहिष्णुता का कवच धारण कर
रहता वह सदैव निर्विकार, निर्द्वंद्व
अटल ध्रुव सा साधना मे लीन
अपने निराले मानदंडों पर प्रतिष्ठित।
स्वतंत्रचेता, स्वाभिमानी
वह तितिक्षारत
कष्ट को, आघात को
मान प्रभु वरदान
प्रतिकूलताओं के निकष पर

इस स्वय को
होता अधिष्ठित।
पास उसके
चर अचर सम्पत्ति का हो
सम्पूर्ण भाव
या नितान्त अभाव,
देखकर समदृष्टि से
स्थिति-विपर्यय
रहता वह प्रशात।
जो नहीं छलता स्वय को
मिथ्या धारणाओं से,
जो नहीं छलता जगत को
सम्मोहक आश्वासनों से।
असत के, दुर्नीति के
साम्राज्य में भी
जो सतत सत नीति का
नैष्ठिक पुजारी
वज्र तन, कोमल कुसुम उर
वह आपदाओं से
नहीं होता कभी भयभीत।
प्रबल झंझावात घेरे
गिरे उल्काएँ
हो भले ही अशनिपात
वह शलाका पुरुष-सा
चेतना की ज्योति को
रखता अकम्पित।
काल की प्रत्येक चितवन
बाँकी अदा पर हो निछावर
वह उदित होते सूर्य को भी
अस्त होते सूर्य को भी
करता प्रणामांजलि निवेदित।
जिसके हृदय में
आग जलती
पृथ्वी महकती

पवन गाता गीत
जल किल्लोल करता
और नभ देता जिसे आशीष
वह चिरजीव, आयुष्मान
बन सशयालु
क्यों करे
निज अस्तित्व का उद्घोष?
सृष्टि के पग में बँधे नूपुर
दिखाएँ कितनी ही मुखरता
और चचलता,
तपश्चर्या में निरत
वह ध्यानयोगी
पद्मासन लगाए
खींच प्राणायाम
अन्तर्जगत में देखता रहता
हिमालय, सिन्धु
नभ, रवि, चन्द्र।
टूट जाता ध्यान उसका
गूँजता जब कर्णकुहरो मे
जगत का करुण क्रदन,
असहाय, दुर्बल, पीड़ितो का
आर्त्त स्वर, व्यंजन
अन्याय, अत्याचार, शोषण दानवो का
क्रूर गर्जन।
मनुजता की
प्राणान्तक पीर अनुभव कर
वह छटपटाता,
चिन्तानल विदग्ध मानस
धधकता,
रोष से, आक्रोश से
वह तिलमिलाता,
भृकुटि तनती
भींच लेता मुट्ठियो को,
अधर नासापुट फड़कते

अंगार आँखों से बरसते
हुंकारता वह बार बार,
फूट पड़ता क्रोध मन का
दग्ध उर का
भाव का होता प्रबल विस्फोट।
देख उसका
घोर प्रलयंकर स्वरूप
अप्रमेय तांडव नर्त्तन
धरती थरथराती
दिशाएँ सहम जातीं
गगन मे छाती निःशब्दता
पवन रुक जाता यथास्थान।
नृत्य थमते ही
हृदय स्थित सृजन
करवट बदलता
और हो चैतन्य वह
नित्य नूतन छंद रचता,
प्रेरणा दे सृष्टि को
निर्माण की, उत्थान की
वह छोड़ जाता
अमिट अपने चिन्ह
काल के
उज्ज्वल ललाट पर।

क्या होता आसान?

किसने गढ़ा है
शब्द 'आसान' ?
शब्द के उस शिल्पी से
मै पूछता हूँ
आत्म प्रवचना
पलायन के किन क्षणो मे?
अधूरे ज्ञान
अधकचरे दर्शन की
किन मन स्थितियो मे
उसने निर्मित किया है
शब्द आसान?
वह अपने दिल पर
हाथ रखकर बताए
क्या वास्तव मे
उसने आसानी से रचा है
शब्द आसान?
माना कि,
जीवन होता द्वन्द्वात्मक
फिर भी चुनौती देता उसे
कोई निर्द्वन्द्व अपवाद।
अथ से इति तक
सृष्टि से प्रलय तक
दृश्य से अदृश्य तक
जहाँ कठिनता, जटिलता का हो
एकछत्र साम्राज्य,
वहाँ किसके बलबूते
विपरीत विलोम तेवर रख
टिक सकता है

किरीट शब्द आसान?
जीवन में, जगत में
प्रकृति के अनन्त लीला क्षेत्र में, घर में
आस पास, पड़ोस में
स्कूल, सड़क, दफ्तर में
देश में, देशान्तर में
आकाश में, पाताल में
बहुआयामी, सर्वव्यापी
दिक् काल में,
किस क्रिया, प्रक्रिया
कर्म, अनुष्ठान को
स्वप्न, अनुभूति
विचार, संकल्प को
धर्म, दर्शन
चिन्तन, अनुचिन्तन को
अर्थगर्भित करता है
शब्द आसान?
अहर्निश चलते हुए
मुक्ताकाश रंगमंच पर
सूरज, चन्दा
तारों का आगमन,
पात्रानुरूप सज्जा
वेशभूषा धारण
कथा को गति देते
मौन मुखर संवाद,
अवसर के अनुकूल
राम को
रावण को
सौ-सौ बार जीना
सौ-सौ बार मरना,
खुद भी हँसना, रोना
सबको हँसाना, रुलाना
क्या होता आसान?
शिशु की किलकारी

कोकिल का कूजन
समीरण का गायन
मधुकर का गुंजन
सागर-वक्षस्थल पर
लहरो का नर्त्तन,
वसुधा की गोद में
पल्लव का क्रीड़न
आकाश-आँगन में
मेघों का विचरण
सहिष्णुता प्रतिमूर्ति
पृथ्वी का कंपन
कुम्भकर्णी निद्रा तोड़
ज्वालामुख विस्फोटन,
अनुभूति अभिव्यक्ति वैविध्य साथ
षड्ऋतु काव्य सृजन
क्या होता आसान?
बदहवास, भागमभाग
जिन्दगी की आपाधापी मे
अनेकानेक व्यस्तताओ के मध्य
समय से आफिस पहुँचना
पकड़ना रेल, बस,
कानफोड़ कोहराम के बीच
करना राम सुमिरन,
अमानवीय वातावरण में
दु:ख दर्द भरी फाइल का
न्यायसंगत निपटान,
तमाम विद्रूपताओ, विसंगतियो
मूर्खताओ, उत्तेजनाओ के मध्य
रखना मन:शान्ति
अबाधित अवधान,
गीधो, बाजो, चीलो की
पैनी, पैनी नोचो, पंजों से
असहाय गरिमा का रक्षण,
कांटो से भरे ...

जीवन के जंगल मे
फूलों से पथ का निर्माण
क्या होता आसान?
यौवन पुष्प उपवन मे
नयनो का नयनो से
गोपन सभाषण,
धर्मक्षेत्र, कुरुक्षेत्र बीचो बीच
अप्रतिम धनुर्धर का
कर्तव्य पालन,
शकर की जटाजूट
हिमाचल की गोद छोड़
पृथ्वी पर गंगा का अवतरण,
तमसावृत परिवेश चीर
झझावात सम्मुख
दीपक का प्रज्वलन,
अप्रमेय बलशाली
साम्राज्यवादी सत्ता को
अहिंसा सत्य के सहारे
देना ललकार,
सिहं शावक के मुख मे दे हाथ
रखना होठों पर हास
क्या होता आसान?
चराचर जगत की, जीवन की
कितनी क्रियाओं. प्रक्रियाओ
भंगिमाओ को गिनाऊँ
कहीं भी तो, कुछ भी तो
नज़र नहीं आता आसान
फिर क्यों भ्रम पालूँ उसका
जो अपने अस्तित्व का न दे सके प्रमाण?

लिखते क्यों कविता

ऐसे ही दिन होगा
ऐसे ही रात
आयेंगे तारे प्रसन्नमुख
सन्ध्या के साथ,
जायेंगे तारे विषादमग्न
निशा के साथ।
ऐसे ही आयेंगे, जायेंगे
जाड़ा, गर्मी, बरसात।
ऐसे ही, उदास पतझर
सूखे सूखे पत्तों से
लिखता रहेगा
अलविदा गीत,
ऐसे ही, उल्लसित ऋतुराज
नूतन किसलयों से
रचता रहेगा स्वागत संगीत।
ऐसे ही, उत्तप्त सूरज
दहकता रहेगा
ऐसे ही, शीतग्रस्त चन्दा
ठिठुरता रहेगा,
ऐसे ही दिग्भ्रमित पवन
भटकता रहेगा
ऐसे ही, निश्चेष्ट गगन
घूरता रहेगा,
ऐसे ही, विक्षुब्ध सागर
गरजता रहेगा,
ऐसे ही, संत्रस्त मानव
कराहता रहेगा,
ऐसे ही, अविराम, निर्बाध, यन्त्रवत्

प्रकति नटी का
सनातन एक ढर्रा
चलता रहा है,
चलता रहेगा।
फिर तुम व्यर्थ ही करते क्यो चिन्ता?
लिखते क्यो कविता?

ऐसे ही, न जाने कितने
परमेश्वर पुत्र पुत्रियाँ
निर्दयी पेट के
निरंकुश बुखार के
दोहरे प्रहार से
होकर मर्माहत,
उदार फुटपाथो की
गोद मे शरण ले
नींद छोड़, स्वप्न छोड़
आदमखोर भूख की
आँखो में आँखे गड़ाते हुए
रात-रात जागते रहे है,
जागते रहेंगे,
फिर तुम व्यर्थ ही करते क्यों चिन्ता?
लिखते क्यो कविता?

ऐसे ही, न जाने कितने
अद्वितीय ईश्वर अश
कलेजे को चीरती सर्दी मे
चीथड़े लपेट
अधनंगे बच्चों को
छाती और घुटनों का
अस्थि कवच देकर
अमोघ जिजीविषा शक्ति से
प्रबल शत्रु शीत का
मुकाबला करते रहे है,
करते रहेगे
फिर तुम व्यर्थ ही करते क्यो चिन्ता?
लिखते क्यों कविता?

ऐसे ही, न जाने कितने
निश्चिन्त पृथ्वी पुत्र
आधुनिक इन्द्रों की
अमरापुरियों को चिढ़ाते हुए,
खुले आकाश तले
बगैर अधिकार, आसक्ति के
धरती के छोटे से टुकड़े पर
बिना दीवार, बिना छत
रसोई घर, अतिथि कक्ष
पंचायत घर, शयन कक्ष
सब कुछ बनाकर
नक्षत्रों से बातें करते रहे हैं
करते रहेंगे।
फिर तुम व्यर्थ ही करते क्यों चिन्ता?
लिखते क्यों कविता?

ऐसे ही, न जाने कितने
देह मन्दिर पुजारी
मौसमों की मार खा
जर्जर तन लिए हुए
रक्त की लालिमा को
कालिमा में बदल कर
रोगों को सच्चा साथी बनाकर
धनी मानी, नामी गिरामी
समाज-स्तम्भों के सामने
तड़प-तड़प कर मरते रहें है,
मरते रहेंगे
फिर तुम व्यर्थ ही करते क्यों चिन्ता?
लिखते क्यों कविता?

ऐसे ही, न जाने कितने
समृद्धि स्वप्नदर्शी जन सोचते
खुद खायें या खिलाएँ बच्चों को?
खुद पहनें कपड़े या पहनाएँ बच्चों को?
होली, दीवाली
दशहरा, ईद, क्रिसमस

प्यारे तो लगते त्यौहार सभी
पर पैसे की जबद्रस्त किल्लत से
बुझे-बुझे चेहरे लिए
ऊपर से हँसते-हँसते
अन्दर से रोते रहे हैं,
रोते रहेंगे,
फिर तुम व्यर्थ ही करते क्यों चिन्ता?
लिखते क्यों कविता?

ऐसे ही, न जाने कितने
समाज-पथ प्रदर्शकों के
नर नारी समता के नारे
सुनते-सुनते पक जाते कान
पर देखते जब अपनी
छोटी-सी बच्ची का
कद बढ़ते रोज
होती नहीं खुशी वैसी
जैसी देख छज्जे पर बढ़ती हुई बेल।
खाते हैं, पीते है, किसी तरह जीते है
आती याद जब पुत्री-विवाह की
दानव दहेज की
पुत्री के जन्म को
मान अभिशाप
चिन्ता मे ऐसे ही घुलते रहे हैं,
घुलते रहेंगे।
फिर तुम व्यर्थ ही करते क्यों चिन्ता?
लिखते क्यों कविता?

ऐसे ही न जाने कितने
युग के कर्णधार
यौवन के शक्तिपुञ्ज
फटेहाल बाप की
गाढ़ी कमाई से पढ लिख
दिग्गज मनीषियों के
बडे-बडे सिद्धान्त रट रट कर
जीवन को ग्रन्थ छोड़

भविष्य के स्वर्णिम स्वप्न सजोकर
कल की आशा, कल के विश्वास
कल आने से पहले ही
आज मिटते रहे है,
मिटते रहेगे।
फिर तुम व्यर्थ ही करते क्यो चिन्ता?
लिखते क्यो कविता?

ऐसे ही न जाने कितने
देदीप्यमान, प्रगति प्रतिष्ठापक
तम का आलिगन कर
होकर मोहान्ध, स्वार्थान्ध
उर्वर वसुधा मे बोते बीज
अन्याय, अत्याचार, शोषण के।
मानवता को करके सरेआम नीलाम
समाज, देश, सस्कृति को
अमानवीय फसल
अधकार सौगात
देते रहे है
देते रहेगे
फिर तुम व्यर्थ ही करते क्यों चिन्ता?
लिखते क्यो कविता?

माना कि, द्वन्द्वपूर्ण जीवन मे
तम भी जियेगा, चलेगा
प्रकाश के साथ-साथ,
असत भी खेलेगा, कूदेगा
सत के साथ-साथ,
मृत्यु भी हँसेगी, गायेगी
जन्म के साथ-साथ
दानवता के मुख पर
होगी मुस्कान, अट्टहास
मानवता के साथ-साथ,
पर जब तक कवि उर मे
सवेदना जीवित है,
चेतना आन्दोलित है

दर्द कसक पीड़ा वेदना कहीं हो
कवि मन रहेगा अशान्त उद्वेलित।
सौ सौ धाराओं में फूटेगी
कवि मन की चिन्ता, आकुलता,
शब्द की शक्ति से
करेगा वह पर्दाफाश
दुर्नीति, आडम्बर का।
जीवन के सूर्य को
न लग सके पूर्ण ग्रहण
इसीलिए करता वह चिन्ता,
लिखता वह कविता।

अचर प्रकृति भी हो
जब अस्त व्यस्त
विशृंखलित, विस्थापित
और चर प्रकृति का
तथाकथित उत्कृष्टतम निदर्शन
मानव!
संस्कृति के रथ का
जिम्मेदार सारथी
मानव!
हो जाये जब कर्तव्यच्युत, लक्ष्यभ्रष्ट
क्षण-क्षण हो मानव धर्म क्षरण
बाणविद्ध हो
अनेक क्रौंच, हंस, हरिण
कैसे यह संभव
कवि का हृदय करे न चीत्कार?
विपत्तिग्रस्त, भोली
मानवीय संस्कृति को
युग अजगर
कर ले न उदरस्थ,
इसीलिए करता वह चिन्ता,
लिखता वह कविता।

नीरो मत बजाओ बाँसुरी

अविश्वस्त, सिरफिरे
सन्निपातग्रस्त काल के
इस खतरनाक दौर मे
जब छू रही हो
आग की उन्मत्त, उद्दाम लपटे
गगन के गर्वोन्नत भाल को,
घेर रखा हो उन्होने
चारों दिशाओ से
तुम्हारे सुसज्जित
भव्यतम प्रासाद को,
लपलपाती जीभ से
वे चाटती ही जा रहीं हो
पूर्वजों के खून पसीने से बनी
अट्टालिकाओं को,
घोर चिन्ता, विकलता के
इन विकट दारुण क्षणों में
स्वांग रच
निश्चिन्तता, आल्हाद का
बैठ अपने भवन के
ऊँचे कगूरे पर
छोड पृथ्वी जननि का
मटमैला दुकूल
नीलाम्बरा के नेत्रो मे खो स्वय को
नीरो! मत बजाओ बाँसुरी
इस शोकमय वातावरण मे।

आत्मवचक, दुराग्रही
इन्द्रधनुषी दिवास्वप्नो के

सम्मोहक जगत से निकल बाहर
क्यों नहीं तुम देखते?
ये अग्निरुपा पताकाएँ
व्यामोहित कर रही है किस कदर
धरणिधर को
दिग्गजों को
दिक्पालों को।
समता, सहजता में पगी
ये प्रफुल्लित ऊर्ध्वमुख लपटे
अपने विजय अभियान मे
भेंट सबसे निश्छल हृदय से
आ रहीं है अब
तुम्हारी ओर भी
तीव्र गति से दौड़कर।
पाल भ्रम
ऊँची अवस्थिति का
कब तक रहोगे बेखबर तुम
अपने सुकोमल तलवों की तपन से?
क्या सोचते हो?
बच सकोगे तुम
दुबककर किसी तरु कोटर मे?
याद रखो·
दावाग्नि की लम्बी भुजाएँ
पहुँच जाऐंगी वहाँ भी
और भस्मीभूत कर देंगी
तुम्हे क्षण मात्र में।
कर्म की चेतावनी है
युग धर्म की चेतावनी है
नीरो! मत बजाओ बाँसुरी
इस शोकमय वातावरण मे।

तुम कहोगे
बाँसुरी तो कान्हा भी बजाते थे,
गोप गोपी ही नहीं

पशु पक्षियो को भी रिझाते थे,
रख अधर पर बाँसुरी
वह, वशीधर कहाते थे।
ठीक है कहना तुम्हारा
किन्तु क्यो तुम भूलते हो?
जिन उँगलियो से कृष्ण ने
वशी सँभाली थी
उन उँगलियो से ही उन्होने
दुर्दान्त दैत्यो को पछाड़ा था,
उन उँगलियो से ही उन्होने
पार्थ के हिलते हुए रथ को
सँभाला था,
अन्याय, अत्याचार, शोषण के विरुद्ध
उद्घोष करने के लिए,
पददलित पीड़ित मनुजता का
साथ देने के लिए,
उन उँगलियो में ले पाँचजन्य
घोर शखनिनाद से
दनुजता को दहला दिया था।
जीवन समर मे
याद कर संदेश
उस युग सारथी का
नीरो! मत बजाओ बाँसुरी
इस शोकमय वातावरण मे।

ओ तीक्ष्णदन्त पाषाण हृदय

मानुष देह निःसृत
उत्तप्त रक्त के प्यासे,
व्यथा वेदना विजड़ित
कोमल मास पिंड के भूखे,
ओ तीक्ष्णदन्त, पाषाण हृदय
युग के शृगाल
वृक, श्वान, श्येन
गृद्ध, काक
तुम नोचो, नोचो
निश्चिन्त भाव से नोचो
गर्वोन्नत मन से नोचो
सम्पूर्ण शक्ति से नोचो
निष्प्राण देह को उसकी
जो देती हुई चुनौती
तुम्हारी अतृप्त क्षुधा तृषा को
निद्रय नेत्रों के सम्मुख
भोज्य वस्तु बन पडी हुई है।
मत रखो मन में सन्देह
देह वह जीवित, स्पंदित है
देही आँखे खोल
उठकर खड़ा हो सकेगा,
रिसते घावो की पीड़ा से आकुल वह
चीत्कार करेगा,
आक्रोश, रोष की ज्वाला से
वह तुमको भस्मीभूत करेगा,
अधिकार, अस्मिता की
जलती मशाल

हाथो मे लेकर
अन्यायी, अत्याचारी
तम के उर को
विदीर्ण कर देगा।
तुम तो निःसशय
कटु दशन अभियान
निरंतर जारी रखो,
जीवन जिसको रोक न पाया
मरण उसे क्या रोक सकेगा?
दीन हीन साधन विहीन वह
जब तक जीवित रहा
निर्निमेष नोचते रहे तुम
उसका जर्जर तन मन
शोषण, उत्पीड़न के
पैने पैने नाखूनो, दाँतो, पंजो से।
तुमने कोई कसर न बाकी रखी
उसकी बोटी-बोटी को
पूरी तरह नोचने मे,
गिन-गिन कर
मुँह का कौर बनाने मे।
पर अब क्यो लपलपा रही है
जीभ तुम्हारी?
क्यों नहीं शान्त होती है
भूख तुम्हारी?
शायद तुम चाहते चाटना
उसकी जिजीविषा को
उसकी अन्तर्ज्वाला को
उसकी सघर्ष चेतना को।
ओ देह जगत के अधिनायक
दानवता के प्रतिपालक
यह कभी न सभव हो पायेगा।
जीवन की इस समर भूमि मे

क्रूर प्रहारों से
तन उसका
कितना ही आहत हो
क्षत विक्षत हो
भू लुंठित हो
पर उसके अभेद्य मन को
तुम कभी परास्त नहीं कर सकते,
चाहे कितना ही
रण कौशल दिखलाओ,
चाहे शस्त्रागार तुम्हारा
खाली हो जाये।
तुमने तो समझा उसको
कृशगात्र
देहमात्र ही
रहे बींधते
रोम-रोम को उसके
विष बुझे हुए बाणों से।
क्या सोचा तुमने कभी?
धूल धूसरित
दुर्बल, जर्जर देह में उसकी
अपराजेय, दुर्द्धर्ष
आत्मा भी बसती है,
जिसे आज तक
कोई भी अन्यायी, अत्याचारी
काट न पाया
जला न पाया
गला न पाया
सुखा न पाया
अप्रमेय
उस शक्ति स्वरूपा की आँखों में
क्रान्ति सदा पलती है,
वह हर शोषण, उत्पीड़न के विरुद्ध
शंखनाद करती है।

अपने-अपने तेवर

कोयल हो, काक हो,
उलूक, सोन चिरैया,
तोता हो, बाज हो,
बगुला, गौरैया।

अपने-अपने तेवर है,
नाज़ नखरे भाषा,
अलग-अलग हाव भाव,
सस्कृति, दिनचर्या।

कोई कूक हूक भरे,
कोई करे काँव-काँव,
कोई दिन-दिन मारा फिरे,
कोई करे रात-रात जागरण।

कोई रटे राम-राम,
कोई दे गिन-गिन कर गालियाँ,
कोई दे जन्म की बधाई,
कोई मनाये बार-बार मरण।

गर्व है सबको अपनी-अपनी,
थाती तहज़ीब पर,
किसी को वह भाये ना भाये,
उनकी चिन्ता का विषय नहीं।

स्वछन्द नभचर तो विचरण करते,
उन्मुक्त अपने लोक मे,
कौन क्या खोता है, पाता है,
रखते वे इसका हिसाब नहीं।

पृथ्वी, आकाश, चाँद, सूरज
सबके सगे सम्बन्धी है,
कौन किससे रखता है नाता,
उत्तर वह स्वयं जाने।

सागर के उर मे उठती है
लहरें रात दिन
कौन उनसे करता कितना संवाद,
भेद वह स्वयं जाने।

हे काल देव

सचराचर सृष्टि नियामक
राग द्वेष विमुक्त
लोभ मोह निरपेक्ष
नित्य अनादि अनन्त
हे काल देव!
शत-शत नमन तुम्हे।
शत शत नमन तुम्हे।।

उषाकाल मे
विचरण करते
बटुक रूप तुम
वेदाध्यायी
प्राची के बालारुण,
मध्याह्न प्रखर यौवनोद्दीप्त
सन्तति पालक सद्गृहस्थ
तुम भुवन भास्कर,
गृह कारज जंजाल विरत
अपराह्न वनाचल के तुम
भजनानन्दी वानप्रस्थी,
अस्ताचलस्थ संध्याश्रम मे
तुम समाधिस्थ, जग उदासीन
सच्चिदानन्द सन्यासी।
ऊर्जा निधान
जड़ता विध्वंसक
चरैवेति उद्घोषक
हे कालदेव!
शत-शत नमन तुम्हे।
शत-शत नमन तुम्हे।।

जीवन हिमाद्रि
सर्वोच्च शिखर पर
समासीन,
भूत भविष्यत् वर्तमान
त्रिनयन,
सर्वाधिप शिव तुम
भृकुटि मात्र से
संचालित करते
असंख्य ब्रह्मांड।
तुम्हारा पलकोत्थान पतन
सृष्टि प्रलय, जन्म मृत्यु
उन्नति, अवनति, विजय, पराजय
प्रेम घृणा
द्वन्द्वात्मक जग जीवन।
सृष्टि कमल मार्त्तण्ड
काव्य कलाधर चन्द्र
हे कालदेव!
शत-शत नमन तुम्हे।
शत-शत नमन तुम्हे।।

मुकुल प्रस्फुटन
खग कुल कलरव
वसुधा का शृंगार
ज्वालामुख, भूकम्प
मेघ गर्जन, जल प्लावन
सकल सृष्टि व्यापार
तुम्हारा अंगुलि निर्देशन।
घट-घट वासी
कण-कण व्यापी
अक्षय शक्ति स्रोत
हे कालदेव!
शत-शत नमन तुम्हे।
शत-शत नमन तुम्हे।।
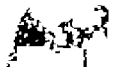
रस अमृत वर्षण

यह शंकर की, प्रलयंकर की
भैरव विराट्
सृजन तप भूमि यहाँ
प्रालेय हलाहल पीकर तुमको
रस अमृत वर्षण करना है।
हो कितने सुललित नररत्न
श्रेष्ठ धीमान यहाँ,
तुमको तो
विषधर व्यालों को
उर पर धारण करना है।

नाना रंग रूप के चित्र विचित्र
जीवों से परिपूर्ण धरा,
तुमको तो
प्रेत पिशाचो, भूतो वैतालो में रहना है।
रत्नाकर ने चित्ताकर्षक बहुविध रत्न
लुटाये हो इस धरती को,
तुमको तो
जलकल्मष कालकूट पी
नीलकंठ बनना है।

कितने ही हो
दिव्य सुगन्धित अंगराग
जगमग आभूषण,
तुमको तो
चिताभस्म भूषित हो
औघड़ बन रहना है।

चाहे खिले कमल
जग सर मे या गुलाब
चम्पा उपवन मे,
तुमको तो बस
बिल्वपत्र
मदार पुष्प से ही
शोभित होना है।
चाहे वीणा बजे कहीं पर
या मृदग, भेरी, शहनाई,
तुमको तो बस
'अइ उणऋलृक'
डमड-डमड डमरु वादन करना है।

गगामृत हित
तृषित अधर हैं
निखिल भुवनवासी जन-जन के,
तुमको तो
जटाटवी में
प्रबल वेगमयि
गगा को धारण करना है।

दक्ष यज्ञ मे
विधि विधान से
सम्मानित हों
सारे देव भले ही,
तुमको तो
समाधिस्थ हो आत्मलीन
हिमगिरि पर रहना है।

नील गगन मे उड़ने वाले
उड़े गरुड़ पर
या कि हस पर,
तुमको तो
ककड पत्थर मे
नन्दी लेकर बढना है।

दैहिक दैविक भौतिक तापो से
जलता नित
जग मानस,
तुमको ही
शशि शेखर बनकर
तापित जग को
शीतलता देना है।

कोई पाये सृष्टि सृजन का श्रेय
पाये कोई पालन का यश,
तुमको तो
सृष्टि गर्भ मे
ध्वंस बीज बो
नूतन रचना है।

युग-युग से होता आया है
झूठ, कपट, व्यापार,
असपृक्त रह उससे तुमको
अल्हड़ बाउर
भोला रहना है।
आतंकित कर ले कितना ही
असुर दैत्य दानव
वसुधा को,
तुमको ही
त्रिपुरारी बनकर उनको
भूलुंठित करना है।

मानवता जब
अविरल अश्रु बहाती हो
भू के कण-कण मे,
बनकर महाकाल
तब तुमको
तांडव करना है।

देख तुम्हारा रौद्र रूप

क्रोधानल,
ब्रह्मांड काँपता थर-थर,
हे औघढ़दानी
करुणार्द्रनयन
तुमको तो
आशुतोष भी रहना है।

मनसिज
अगणित सुमन बाण
छोड़े पृथ्वी अम्बर को,
पर त्रिनेत्र के सम्मुख उसको
धू-धू जलना है।
ऐसे ही वे
क्षीण देह धनु होते
जिनको तोड़ दिया या मोड़ दिया,
तुमको तो
शिव पिनाक सा
अचल अटल ध्रुव रहना है।

माया की नगरी में मानव
तिनका-तिनका संग्रह करता,
तुमको तो
फक्कड़ बनकर
एक कमंडल ही रखना है।

ध्वनियों का सजाल बिछा है,
छन्दों का अम्बार लगा है,
तुमको तो
प्रणव छंद ओंकार मात्र
हृदयंगम करना है।

शब्दाराधना
खेल नहीं, व्यापार नहीं
जिससे जुड़े
शब्द के बाजीगर, सौदागर

तुमको तो बस
शिव शिव जपते
शिवमय
शब्द-ब्रह्म होना है।

बाँधे है इस जीव जगत को
सत रज तम की डोर,
गाँठ खोल कर उसकी
तुमको तो
निर्गुण निराकार होना है।

जड़ता, चेतनता ढक लेती
चेतन सहज स्वरूप भूलता,
तुमको तो
निर्द्वन्द्व ज्योतिसम्पन्न
सच्चिदानन्द रूप रहना है।

विश्वाबुधि मे
चचल लहरें
निशि दिन नर्तन करती रहती
तुमको तो
उतुग शिखर पर
समासीन हो
द्रष्टा साक्षी बन रहना है।

जग प्रपंच सम्मोहित मानव
स्वार्थ नींव पर
सम्बन्धों के भवन बनाते,
तुमको तो
निःस्वार्थ भूमि वदन कर
एकान्त शिवालय मे रहना है।

कस्तूरी की प्राप्त्याशा मे
भरता कुलाँच मृग
वन-वन,
तुमको तो

आत्म नाभि मे
उसको अनुभव करना है।

जिसको देखो लगा हुआ है
अपना-अपना घर भरने मे,
तुमको तो
सकल विश्वहित
विश्वनाथ विश्वम्भर बनना है।

स्वार्थ नगर मे
सभी व्यथित चिन्तित है
अपनी-अपनी पीड़ाओं से,
तुमको तो
सर्वभूतहित साधक
भूतेश्वर बनना है।

अमृत पीकर
मृत्यु विजय का
कोई अधिकारी बन जाये,
तुमको तो
विषपायी होकर
मृत्युंजय बनना है।

गुरु को लघु
लघु को गुरु करते
जोड़-तोड़ के अभ्यासी
तुमको तो
रामचरणरत होकर
रामेश्वर बनना है।

भय के बादल
मडराये जब
जन के मनाकाश मे
तुमको ही तब
शक्ति सचरण हेतु
अभय मुद्रा रखना है।

[illegible]
[illegible]
[illegible]
[illegible]
उनको शूल बनाना है।

घोर घटाएँ
घिर घिर आएँ,
मेघों का हो गर्जन तर्जन,
तुमको तो
शैलेन्द्र शृंग पर
जयशंकर
घोषित करना है।

अलग अलग राहों पर
चलते रहते सूरज चंदा
तुमको ही
एक भाल संगम पर
दोनों को रखना है

सृष्टि सृजन के
सत्य सनातन को
भ्रम आवृत रखता
उसे अनावृत करके
तुमको तो
एकलिंग अर्चन करना है।

शक्ति पताका फहर रही है
जल मे, थल मे, नभ मे,
उसको शिव सम्बन्धित करके
तुमको तो
जग मंगल करना है।

जो क्षणभंगुर
उसके हित क्यों
जन्म-जन्म का लेखा जोखा,

तुम को तो
अजर, अमर, अविनश्वर
आत्मतत्व चिन्तन करना है।

दावानल हो
या बड़वानल या जठरानल
अग्निशमन के हेतु तुम्हें
त्रिनयन वन्दन करना है।

तट की
शक्ति परीक्षा लेने
उद्धत लहरे आती रहती,
तुमको तो
अपनी शक्ति सिद्धकर
उनको लौटाते रहना है।

अभिधा हो, लक्षणा, व्यंजना
सब निरीह दुर्बल क्यो है,
उनमे
शिव, सुन्दर, सत्य
समाहित करके
तुमको तो
शब्द शक्ति
ऊर्जस्वित रखना है।

•

उसी पुरुष के
धर्म मोक्ष
राजीव नयन
तो काम अर्थ भी
चरण कमल हैं,
जीवन शिव को
पुरुषार्थ चतुष्टय रथ पर
तुमको बैठाना है।

-

सुख ऐश्वर्य विधायिनि
देवी लक्ष्मी

। मौं ।।
केन्द्र बिन्दु बनो?
बनकर तुमको लक्ष्मी शंकर
लक्ष्मी धारायान करना है।

बहुत बहुत जल बरसा
फिर भी
सिकता तो सिकता ही है,
तुमको तो
उसके हृदय देश में
भागीरथि सम
सदा सर्वदा बहते रहना है।

कहीं हारें पग
जग में हे प्रभु
यहाँ वहाँ तो
कीचड़ ही कीचड़ है
उसमें भी जो
रहता है अतिमान प्रफुल्लित
ऐसा तुमको
कमलेश्वर बनना है।

खो देती है प्रबल वेग, गति, लय
यह जीवन सरिता
समतल सपाट, निर्बाध धरा पर,
झूम-झूम कर नाचे गाये
जो चम्बल बीहड़ में
ऐसा तुमको
चमलेश्वर बनना है।

करने को विनाश तत्पर हो,
एक नहीं दशशीश जहाँ,
वहाँ सृजन के यज्ञ कुण्ड की
अग्नि तुम्हें
जलती रखना है।

जहाँ सुकृति उन्मेष नहीं
विकृति विप्लव को आमंत्रण देती है
जीवन के
अनगढ़ पत्थर को काट छाँट
तुमको तो
सुमनोहर नटराज महिमा
मूर्तित करना है।

जो ऋषि
जग के हित जीते हैं,
उसके हित ही मर जाते हैं
तुमको तो
ऋषिशंकर बन उनकी
गौरव गाथा लिखते रहना है।

नीतिविमुख हो
अट्टहास कर रहा
राज वसुधा पर,
तुमको तो
इस धर्मात्मा धरा पर
राजनीति का
पाणिग्रहण कराना है।

दर्द कहाँ है, शिकन कहाँ है
चटख चटख कर
टूट रहे सम्बन्ध निरन्तर
भावावेष्टित ऊर्जस्वित कर उनको
तुमको तो
शिव संवेदन
जीवित रखना है।

कुटिल दृष्टि का श्येन भला
कब समझा है, दो आँखों की
छल छल भाषा,
त्रिनयन से

अवतार प्रकट कर
उस मंदाकिनी का
मान विमर्दन करना है।

युग यमुना का
सहज सरल उर
फिर विदग्ध है
अहम्मन्य कालिया नाग की
भीषण फूफकारों से,
गोप ग्वाल हित
कृष्ण रूप रख
हे शिव!
तुमको तो
कालियमर्दन करना है।

हे धर्म धरा मत छोड़ो

एक तुम्हीं पर आश्रित होकर
युग-युग से वह जीती आई,
रावण कंस हिरण्यकशिपु के
अत्याचारो को सहती आई,
पदाक्रान्त हो दुराचारियो से
निशि दिन अश्रु बहाती आई,
अब देख रही वह मात्र तुम्हारी ओर
धर्म! तुम नाता मत तोड़ो।
आँखो मे आँसू भर धरती तुम्हे पुकार रही,
हे धर्म! धरा मत छोड़ो।

गिरि सरि सिन्धु भार क्या कम था?
उसके एक अकेले सिर पर।
उस पर भी वह बल प्रमत्त मदगर्वित,
राक्षस पद चाप सहे अपने तन पर।
अपनी व्यथा वेदना ही असह्य,
पर धर्मग्लानि तो वज्रपात है उसके उर पर,
जन मन की पीड़ा के ज्ञाता, प्रणतपाल,
हे प्रभु! युग की जड़ता को तोडो।
आँखो मे आँसू भर धरती, तुम्हे पुकार रही,
हे धर्म! धरा मत छोड़ो।

क्षुधित तृषित अति जर्जर धरा धेनु
अत्यल्प दुग्ध से मानवता पुत्री को पाल रही,
भीषण ग्रीष्मातप वर्षा हिमपात बवडर
ईति भीति से निशि दिन उसको बचा रही,
विजय श्री का वरण करे आत्मजा सर्वदा
इसीलिए जननी कष्टों को झेल रही,

ओ सृष्टि नियामक मानवता के जनक धर्म
तुम भी कर्तव्य निभाओ मुख मत मोड़ो।
आँखों में आँसू भर धरती तुम्हें पुकार रही
हे धर्म धरा मत छोड़ो।।

मर्माहत चेतना भूमिजा शोकाकुल है
निर्मम रावण के अशोक उपवन में,
धर्म राम से हो वियुक्त वह दीर्घकाल से
एकाकी अवसन्न पड़ी है तरु छाया में,
छली प्रपंची दुष्ट दशानन बहुत चाहता
दृढ़व्रती वैदेही हो उसके वश में,
अवसादमग्न पृथ्वी तनया के प्राण पखेरू
उड़ ना जायें, धर्म राम तुम दौड़ो।
आँखों में आँसू भर धरती तुम्हें पुकार रही
हे धर्म धरा मत छोड़ो।।

राष्ट्र चैतन्य

किस गहन गुफा में
निद्रा निमग्न हो तुम,
सांस्कृतिक चेतना विच्छेदित
चैतन्य राष्ट्र के?
नव संवत्सर पाहुन
आया द्वार तुम्हारे,
निद्रा, जड़ता को त्यागो
तुमको उसका अभिनन्दन करना है।

निशा गोद में सोया था
जो स्वप्न फूल कल,
वह कल कूजन कर रहा
आज इस नव प्रभात में,
उदयाचल से स्वर्णिम रश्मिरथी
कहने आया है तुमसे,
तंद्रालस्य त्याग निज तेज
जगत को दिखलाना है।

भीषण प्रचंड उत्ताल तरगे तो
आती जाती रहती हैं,
पर भारत अक्षय वट को
कौन हिला पाया है?
महाप्रलय में भी जिसकी शाखा पर
पुरूषोतम स्वयं विराजे,
उस पर तुमको भावाक्षत चदन
उर प्रसून अर्पित करना है।

धरती के सूखे तपते
आकुल अधरो को देख,
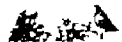
परन्तु स्वकातर मेघ सदा
सन्देश लुटाता आया है,
सुन यक्ष हृदय की ज्वाला से
जग जल जल जाये
शीतलता सुधारस, शान्ति विधायक
मेघदूत तुमको बनना है।

विद्वेष, ईर्ष्या, हिंसा की लपटों से
धू-धू जलती यह जगती,
शीतल जलधार पिपासु पड़ी है
सन्तति नाश देख बिलख रही है
तुमको बनकर आज भगीरथ
सगर सुतों की देह राख को,
पावन जाह्नवी स्पर्श से
पुलकित, स्पंदित करना है।

श्याम विद्यार्थी

जन्म तिथि 15 अगस्त सन 1949
जन्म स्थान कस्बा-कमालगज, जिला-फर्रुखाबाद (उत्तर प्रदेश)
शिक्षा एम० ए० (अग्रेजी एव हिन्दी साहित्य) बगाली भाषा मे डिप्लोमा इलाहाबाद विश्वविद्यालय, इलाहाबाद। पत्रकारिता मे स्नातकोत्तर डिप्लोमा, राजस्थान विश्वविद्यालय, जयपुर।
कार्य क्षेत्र इलाहाबाद से प्रकाशित समाचार पत्र 'नार्दन इडिया पत्रिका' के सपादकीय विभाग मे पॉच वर्ष तक कार्य। उसके पश्चात् लगभग उन्नीस वर्ष तक आकाशवाणी के विभिन्न केन्द्रो (इलाहाबाद, उदयपुर, कानपुर, जयपुर, बम्बई व कोटा) पर कार्यक्रम अधिशाषी तथा सहायक केन्द्र निदेशक, दूरदर्शन केन्द्र, अहमदाबाद मे उप निदेशक (कार्यक्रम) रहने के उपरान्त सप्रति दूरदर्शन केन्द्र रॉची मे केन्द्र निदेशक
प्रकाशन कौमुदी पचेश्वर मधुमती ओर हरिगन्धा, सुजस दृष्टिकोण, साहित्य अमृत भाषा सेतु राष्ट्रवीणा साहित्य सहिता रूपाम्बरा इन्द्रप्रस्थ भारती राजस्थान पत्रिका जे० वी० जी० टाइम्स तथा गुजरात वैभव आदि पत्र-पत्रिकाओ मे कविताएँ प्रकाशित।

समीक्षात्मक एव सस्मरणात्मक लेखो का समय-समय पर प्रकाशन।
प्रसारण आकाशवाणी एव दूरदर्शन के विभिन्न केन्द्रो से कविता सस्मरण तथा भेटवार्ता का प्रसारण।

वर्तमान पता केन्द्र निदेशक, दूरदर्शन केन्द्र
रातू रोड राची 1 दूरभाष 202192